शोध मंथन Vol. XV No.IV Oct.- Dec. 2024 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Impact Factor 8.877 (SJIF)

छापाकला की विकास यात्रा

प्राप्तिः 10.10.2024
स्वीकृतः 22.12.2024

88

ज्योति रानी
शोधार्थिनी
ललित कला विभाग
मेरठ कालेज मेरठ
Email: jytoiardhya2022@gmail.com

प्रोफेसर अंजू चौधरी
प्राचार्य महिला महाविद्यालय
किदवई नगर,कानपुर

सारांश

भारतीय छापाचित्र कला आरम्भ से ही समाज का दर्पण रही है। कलाकार किसी भी युग का हो वह माध्यम की खोज करता रहा है। इसी आधार पर छापाकला के इतिहास को जानने से पूर्व कलात्मक बोध को जानना अति आवश्यक है।मनुष्य में रुप, सौन्दर्य व कलात्मक बोध जन्म–जात है। इसीलिए कलात्मक और सुन्दर रुपों का सृजन मनुष्य उस समय से करता आया है। जब उसके पास न कोई भाषा थी और न ही कोई सभ्यता। उस प्रागैतिहासिक मानव ने स्वयं को सम्भवतः सर्वप्रथम अपनी परछाई में देखा होगा और हाथ एवं पैरों की अनायास उभरी हुई छाप जो कि उसके निवास स्थान प्राकृतिक रुप से बनी गुफाओं की दीवारों पर,को भी उसने एक रुपाकार की भाँति समझा और इन्हीं छापों से रुप बोध का वह जन्म–जात गुण कलात्मक अभिव्यक्ति के रुप में परिवर्तित होता चला गया। इन्हीं छापों के माध्यम से मानव की सृजनात्मक प्रवृत्ति को एक आधार मिला। गुफाओं की दीवारों, चट्टानों से प्राप्त हाथ के छापे, पैरों के चिन्ह इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण है और उसकी यही इच्छा कई प्रकार से अपने आप में उभर कर आई है और यही से उसकी कलात्मक यात्रा का प्रारम्भ हुआ। गुफा चित्रों से प्रारम्भ होकर सुमेर में मिट्टी की पट्टियों पर लिपि, सिन्धु सभ्यता की मोहरें, मिश्र में पेपीरस (कागज का प्रारम्भिक स्वरुप) पर छवियों और शब्दों के संयोजन से बनी पाण्डुलिपियाँ, चीन में ब्लॉक से मुद्रण एवं जॉन गुटेनबर्ग द्वारा गतिशील अक्षरों के विकास और उससे मुद्रित पुस्तकें तथा वर्तमान डिजिटल पद्धतियों को छापाकला के इतिहास को समृद्ध बनाने का श्रेय है। छापाकला के क्षेत्र में विश्व की सबसे प्राचीनतम विद्या काष्ठ छापाकला ही दिखाई देती है। छठी शताब्दी में वह विद्या चीन में परिधान छपाई के काम में प्रयोग होती थी। आज छापा चित्रकला को सामान्यता प्रिन्ट अथवा ग्राफिक नाम से पहचाना जाता है। भारत में पहली छपाई मशीन 1556 ई.में गोआ में लगी थी किन्तु परिस्थितिवश इसका समुचित विकास नहीं हो सका। आधुनिक युग में अधिकांश कलाकार

छापाकला (ग्राफिक आर्ट)में न केवल अपनी मौलिक अभिव्यक्ति करना चाहते हैं वरन इसकी विविध विधाओं को अपनाकर अपनी आजीविका के साधन के रुप में इसमें अपार सम्भावनाएँ खोज रहे हैं।

मूल शब्द

छापाकला, लिथोग्राफी, वुडकट, लिनोकट, मेजोटिन्ट, ड्राईप्वॉइन्ट, एक्वटिन्ट प्रागैतिहासिक।

कलाएँ भावभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है जिसके द्वारा मानव ने आदिकाल से ही स्वयं को अभिव्यक्त किया है।[1]इतिहास साक्षी है कि प्राचीनकाल से ही मनुष्य की दृढ इच्छा शक्ति रही है। वह अपने दैनिक अनुभव, विचार, सुविज्ञता और ज्ञान को अलग–अलग माध्यम से संचारित करता है। ताकि वह इन्हें भविष्य में आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रख सके और उसकी यह इच्छा कई प्रकार से अपने आप में उभरकर सामने आई है। सर्वप्रथम उसने संकेत प्रतीक तथा शारीरिक भाव भंगिमाओं द्वारा अपने विचार प्रकट किए। धीरे–धीरे वह इन सबके अतिरिक्त आँखों द्वारा दिखाई देने वाली सतहों, चट्टानों, मिट्टी की परतों एवं अन्य सामग्रियों पर अपने विचार अंकित करने लगा। इसी विचार मन्थन तथा विचारों को दूसरों तक पहुँचाने की विशिष्टता के कारण ही मानव मौलिक रुप से पशुओं से भिन्न है। इन्हीं रेखांकित प्रयत्नों के माध्यम से मनो भावों की अभिव्यक्ति को व्यक्त करने के कारण ही मानव सभ्यता का निरन्तर विकास हुआ है।

मानव ने अपने विचारों की अभिव्यक्ति करने के लिए सर्वप्रथम सम्भवतः ध्वनि संकेतों (भाषा) का प्रयोग किया होगा। सभ्यता के विकास के साथ–साथ मनुष्य ने अपनी भाषा एवं विचारों को सम्प्रेषित करने एवं सुरक्षित रखने लिखने के लिए अलग–अलग माध्यमों की खोज की। प्रारम्भ में चित्रों एवं प्रतीकात्मक संकेतों का चित्रण प्रागैतिहासिककाल से ही प्रारम्भ हुआ,इस प्रकार दृश्य सम्प्रेषण का प्रारम्भिक स्वरुप चित्रण था।प्रागैतिहासिककाल से सभ्यता के विकास के साथ–साथ कला के विभिन्न माध्यमों का प्रार्दुभाव हुआ।[3] मानव ने चाक्षुप अभिव्यक्ति के क्षेत्र में समय और श्रम बचाने के लिए सम्भवतः छापाकला का भी सहारा लिया होगा। जैसे कि आज भी प्रागैतिहासिक कालीन चित्रों में चट्टानों पर छपी हुई हाथ व पैर की छाप आदि। जब आदिकालीन मनुष्य आहार पूर्ति के लिए शिकार करता था तो उस समय मिट्टी व कीचड़ में बने उस पशु के पद् चिन्हों से उसके मस्तिष्क में उस पशु की छवि उकर जाती थी। जिसके सहारे धीरे–धीरे वह उस पशु को पहचान लेता था। क्योंकि उसे दिखाई देने वाले पद् चिन्ह को आदि मानव ने उस पशु के प्रतीक (ग्राफिक चिन्ह) के रुप में देखा होगा। प्रारम्भिक पाषण काल से उत्तर पाषण काल या नव प्रस्तर (35000 ई. से 4000 ई.) तक की गुफाओं में चित्रों के ऐसे अनेकों प्रमाण मिले हैं। यहीं से रेखा चित्रों के साथ–साथ छापा चित्रों का सिल–सिला प्रारम्भ हुआ है। जैसे कि कोहबर (मिर्जापुर) की गुफा छत में तथा कन्डाकोट पहाड़ के सभी पर्वती मार्ग में स्थित अनेक शिलाश्रयों पर क्षेपाकन विधि से अंकित गेरुए रंग के ऐसे अनेक हस्त चिन्ह प्राप्त हुए हैं जिन्हें हम भारतीय छापाकला के प्रारम्भिक छापाचित्र मान सकते हैं। प्रागैतिहासिक मानव प्राकृतिक रंगों से अन्जाने में रंगे अपने हाथ की छाप अंकित करता था। कहीं अकेले एक हाथ की छाप मिलती है। कहीं अकेले दोनों हाथों की छाप मिलती है। तत्पश्चात् सिन्धु

सभ्यता की मोहरें व सिक्के इसके पुष्ट प्रमाण है। मोहन जोदड़ो और हड़प्पा के उत्खनन से प्राप्त मिट्टी की मुहरों के खाँचे देखने से स्पष्ट होता है कि इस समय भी छापाकला की धारणा कहीं न कहीं मानव में रही होगी। तीन हजार वर्ष प्राचीन इस हड़प्पा संस्कृति के अन्तर्गत बने मृत्तिका पात्रों के ऊपर जो रेखांकन किये गये हैं वह तत्कालीन संस्कृति से हमारा परिचय करवाने के कारण बड़े महत्व के हैं। गुफा चित्रों से प्रारम्भ होकर सुमेर में मिट्टी की पट्टियों पर लिपि, सिन्धु सभ्यता की मोहरें, मिश्र में पेपीरस (कागज का प्रारम्भिक स्वरुप) पर छवियों और शब्दों के संयोजन से बनी पाण्डुलिपियाँ, चीन में ब्लॉक से मुद्रण एवं जॉन गुटेनबर्ग द्वारा गतिशील अक्षरों के विकास और उससे मुद्रित पुस्तकें तथा वर्तमान डिजिटल पद्धतियों को छापाकला के इतिहास को समृद्ध बनाने का श्रेय है। 1450 ईसा पूर्व में प्रथम छपाई मशीन का आविष्कार जॉन गुटेन बर्ग ने किया था। छापा कला के प्रथम स्त्रोत 206 ईसा पूर्व हान् वंश के दौरान दिखाई देते हैं।मोहरों के प्रयोग के इस युग ने छापाकला के उत्थान में महत्वपूर्ण येागदान दिया। राजघरानों तथा व्यक्तिगत महत्व के दस्तावेजों को प्रमाणिकता देने के लिए मोहर द्वारा चिन्हित करने की परम्परा काफी विस्तार से प्रचलित थी। इसके इतिरिक्त शिला लेखों पर स्याही को रगड़कर अथवा स्याही को खींचकर छापा भी लिया जाता था जिसने स्याही युक्त लकड़ी के ठप्पों द्वारा पुस्तक की रचना का मार्ग प्रषस्त किया। छापाकला का व्यवस्थित इतिहास जापान से प्रारम्भ माना जाता है। लकड़ी के ठप्पों के ही द्वारा छपाई की उत्पत्ति से ही जापानी छापाकारों को संसार में सर्वाधिक निपुण समझा जाता है। छापाकला के क्षेत्र में विश्व की सबसे प्राचीनतम विद्या काष्ठ छापाकला ही दिखाई देती है। छठी शताब्दी में वह विद्या चीन में परिधान छपाई के काम में प्रयोग होती थी। प्रारम्भ में कलाकार चेरी, वुड, बॉक्स आदि लकड़ियों के सपाट चिकने पटरों पर तेजधार वाले चाकू या टूल से आकृतियाँ ऊकेरते थे, इन उभरी हुई आकृतियों को स्याही लगाकर छाप लिया जाता था। चेरी की लकड़ी पर उत्कीर्ण ठप्पों के द्वारा कई रंगों में छापे गये चित्र आज भी बेजोड़ हैं। इस प्रकार के छापे रिलीफ प्रिन्ट कहलाए। 17वीं सदी ग्राफिक डिजाइन के नव परिवर्तन के लिये अपेक्षा कृत शान्त समय था। इस समय सम्पूर्ण यूरोप में लकड़ी केब्लॉक के स्थान पर ताँबे की प्लेट उत्कीर्णन (copper plate engraving) द्वारा पुस्तकों के इलेस्ट्रेशन मुद्रित किये जाने लगे थे। छापा चित्रकला को सामान्यता प्रिन्ट अथवा ग्राफिक नाम से पहचाना जाता है। अंग्रेजी में ग्राफिक का अर्थ लेखन चित्रण चित्रित या प्रतीकात्मक यथा आर्ट या कला को एक आकर्षक उत्पादन के लिए या एक कल्पना के सृजन के लिए प्रयुक्त कारीगरी के रुप में जाना जाता है। कामसूत्र में वात्स्यायन ने चौसठ कलाओं में चित्रकला को चौथा स्थान दिया है तथा और छापाकला चित्र बनाने का ही एक माध्यम है। शिल्प शास्त्र में दृश्य बनाने को तकनीकी भाषा में चित्र कहा गया है।

साधारणतः ग्राफिक छापाचित्र कला शब्दावली पुस्तक मुद्रण व व्यवसायिक कला से ललित कला तक की अनेक क्रियाओं का सम्मिश्रण है। आरेख चित्रण चिन्ह एवं प्रतीक चाहे वह चित्रित हो या छपे हुये भी ग्राफिक चित्रण के अन्तर्गत ही आते हैं। इस प्रकार इस पद्धति में कलाकार मूल आकृति के छाप द्वारा अनेक प्रति बिम्ब निकालते हैं तथा यूरोप में चित्रकार हाल्विन पहले छापाकार थे जिन्होंने सीधे लकड़ी पर रेखांकन कर उन्हें तराश दिया। इनकी प्रसिद्ध छापाचित्र श्रृखला ''मृत्यु का नृत्य'' के काष्ठ ब्लॉक उन्होंने स्वयं तराशे। इनके काष्ठ छापों में अलंकारित और शिल्प का प्रभाव कम होता गया। छापाकार लकड़ी के मूल चरित्र को छापने का प्रयास करने लगे। यही कलाकार

हॉल्विन के चित्रों की विशेषता है। इस प्रकार सम्पूर्ण यूरोप में छापाकला का समय के साथ–साथ निरन्तर विकास हुआ तथा यूरोप में ड्यूरर, मुंक पिकासो आदि कलाकारों के सतत् प्रयास से छापाकला अभिव्यक्ति का स्वतंत्र माध्यम बनी तथा यूरोपीय चित्रकार ड्यूरर ने सर्वप्रथम 14 वीं सदी में छापा चित्रण को कलात्मक माध्यम के रुप में प्रयुक्त किया। एपोकेल्प्स तथा ईसा एवं मेरी के छापाचित्रों से उसकी ख्याति और भी बढ़ गयी। इसके अतिरिक्त छापा चित्रण कला को चित्रकला की भाँति प्रथम विद्या का स्तर हॉलैण्ड में 17वीं सदी में रेम्ब्रा के प्रयासों से प्राप्त हुआ।भारत में पहली छपाई मशीन 1556 ई.में गोआ में लगी थी किन्तु परिस्थितिवश इसका समुचित विकास नहीं हो सका। भारत में 1850 ई. के पश्चात् ही यूरोपीय सरकार द्वारा स्थापित कला विद्यालयों में शिला मुद्रण, उत्कीर्णन तथा अम्लांकन के अध्यापन से छापाकला का प्रचलन हुआ। 1820 ई. में यूरोपीय शासकों ने लिथोग्राफी का प्रयोग नक्शों व चार्ट की छपाई के लिये किया।ऐशियाटिक लिथोग्राफी प्रेस, कोलकाता में 1825 ई. में लगी।सर्वप्रथम राजा रवि वर्मा ने 1894 ई.में लिथोग्राफी प्रेस, मुम्बई में लगाई जहाँ अपने चित्रों को आलियोग्राफ विधि से छपवाया।छापा चित्रण की चार आधार भूत पद्धतियाँ हैं। प्रथम रिलिफ प्रोसेस जिसमें वुडकट तथा लिनोकट आते हैं। भारत में वुड एन्ग्रेविंग 19वीं सदी में सर्वप्रथम कम्पनी षैली के चित्रकारों द्वारा प्रचलित हुई।तत्पश्चात् छापा चित्रण को चित्रांकन के लिए ''इण्डियन सोसायटी ऑफ ऑरियन्टल आर्ट'' के चंचल बनर्जी'' ने सर्वप्रथम प्रयुक्त किया। आपने वुडकट की तकनीक पेरिस में सीखी। उस समय भारत में कला का पुनरुत्थान काल चल रहा था। इसी समय गगनेन्द्रनाथ ने छापा चित्रण को मात्र पुस्तक इलस्ट्रेशन से मुक्त करवाकर प्रथम स्तर दिलवाया व नन्दलाल बोस तथा रविन्द्रनाथ टैगोर ने भी वुडकट व लीनोकट कीअपनी शैली विकसित की।[4] छापा चित्रण की द्वितीय पद्धति इन्टीग्लियो है जिसमें धातु प्लेट पर ड्राईप्वॉइन्ट इनग्रीविंग, ऐचिंग, मेजोटिन्ट तथा एक्वटिन्ट आदि तकनीकों से अंकन कर छाप लिये जाते हैं। ऐचिंग पद्धति कोलकाता में मुकुल चन्द्र डे तथा नन्दलाल बोस द्वारा स्थापित की गई।

1940 ई. के दशक में शान्ति निकेतन के कलाकार रमेन्द्रनाथ चक्रवर्ती, लखनऊ के एल.एम. सेन तथा मुम्बई में वाई.के. शुक्ला एवं चित्ता प्रसाद ने बहुत ऐचिंग, एक्वाटिन्ट, ड्राईप्वॉइन्ट्स किये। इस समय तक बंगाल स्कूल के अनुयायियों द्वारा ही छापा चित्रण किये गये जो संख्या में गिने, चुने थे। आधुनिक भारतीय छापा चित्रण कला का वास्तविक विकास 1950 ई. के पश्चात् ही हो पाया। छापा चित्रण की तृतीय विद्या प्लेनोग्राफी है जिसे लिथोग्राफी भी कहते हैं। कोलकाता में कार्यरत दो फ्रेन्च कलाकारों एम. बेल्नोस तथा एम. दि साविग्नेक द्वारा भारत में लिथोग्राफी प्रारम्भ की गयी। सेरीग्राफी छापा चित्रण की चतुर्थ विद्या है जो चीन मिश्र यूरोप में विकसित हुई। 1930 ई. में अमेरिका में भी इसका प्रचलन प्रारम्भ हुआ। भारत में सम्भवतः के.जी. सुब्रह्मण्यम प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने सेरीग्राफ पद्धति को अपनाया। परमजीत सिंह व दत्तात्रेय दिनकर आप्टे भी इस पद्धति में कार्यरत है।अन्ततः हम कह सकते हैं कि आधुनिक भारतीय छापा चित्रण का विकास 1950 ई. के पश्चात् ही हुआ।1946 ई. में बड़ौदा में नारायण बाला जी जोग लेकर के प्रयासों से ग्राफिक कार्यशाला का प्रारम्भ हुआ। जहाँ से जय कृष्ण, लक्षमा गौड, शान्ति दवे, जयन्त पारीख, ज्योति भट्ट आदि अच्छे छापा चित्रकार प्रकाश में आये। कंवल कृष्ण, सोमनाथ होर तथा जग मोहन चोपड़ा व अन्य कलाकारों ने 1967 ई. में दिल्ली में एक ग्राफिक कार्यशाला भी स्थापित की तथा ग्राफिक कलाकारों का एक दल

ग्रुप ''8'' भी स्थापित किया। अकबर पद्मसी ने भी मुम्बई में एक कार्यशाला स्थापित की। राष्ट्रीय ललित कला अकादमी, नई दिल्ली की गढ़ी कार्यशाला चोल मण्डल, आर्टिस्ट विलेज, चेन्नई तथा हैदराबाद में भी ग्राफिक कार्यशालाएँ बनीं। इस प्रकार सम्पूर्ण भारत वर्ष के अनेक राज्यों में छापाकला की शिक्षा प्रदान किए जाने तथा कलाकारों की अपनी प्रयोग धर्मी मेघा के फलस्वरुप भारत में छापाकला निरन्तर विकास की ओर अग्रसर है। आधुनिक युग में अधिकांश कलाकार छापाकला (ग्राफिक आर्ट) में न केवल अपनी मौलिक अभिव्यक्ति करना चाहते हैं वरन इसकी विविध विधाओं को अपनाकर अपनी आजीविका के साधन के रुप में इसमें अपार सम्भावनाएँ खोज रहे हैं। इसीलिए इसकी व्यवसायिक महत्ता, जो कि प्राचीनकाल से है, वह भी बरकरार है। साथ ही इसकी विभिन्न तकनीकी ने कलाकारों के सम्मुख अपनी सौन्दर्यात्मक अभिव्यक्ति के नये आयाम खोल दिए हैं। जिस कारण आज असंख्य छापाकार वैश्विक स्तर पर कार्यरत रहा है और निरन्तर नवीनी प्रयोगों द्वारा छापा कला की नयी–नयी तकनीकों एवं मिश्रित माध्यमों में चित्रांकन कर रहे हैं जिससे सिद्ध होता है कि छापाकला की यात्रा निरन्तर विकासशील है और आगामी समय में नये प्रयोग भविष्य के गर्भ से कुछ नयी सम्भावनाओं के साथ व्यक्त होंगे।

सन्दर्भ

1. कुमार, डॉ. सुनील–भारतीय छापा चित्र (आदि काल से आधुनिक काल तक) भारतीय कला प्रकाशन, दिल्ली, पृ0.सं.–1
2. यादव, नरेन्द्र सिंह–विज्ञापन तकनीक एवं सिद्धान्त, राजस्थान, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, सन्–2013, पृ0.सं.–53
3. चतुर्वेदी, डॉ. ममता–समकालीन भारतीय कला, राजस्थान, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, सन्–2016, पृ0.सं.–75
4. समकालीन कला की पत्रिका, ललित कला अकादमी का प्रकाशन, सम्पादन–डॉ. जयोतिष जोशी, समकालीन कला, अंक–5